International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(2): 84-88

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(2): 84-88
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 05-01-2016
Accepted: 09-02-2016

डॉ0 उमा शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, नानकचन्द ऐंग्लों संस्कृत कॉलेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ0 उमा शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, नानकचन्द ऐंग्लों संस्कृत कॉलेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

''पर्यावरण–चेतना'' अथर्ववेदीय भाष्यों के परिप्रेक्ष्य में

डॉ0 उमा शर्मा

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2016.v2.i2b.1742

सारांश
अथर्ववेदीय ऋषियों ने मानव के सुस्वास्थ्य, सुसमृद्ध एवं सुखी जीवन की कामना से पर्यावरण की शुद्धि को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, पर्वत, सूर्य, औषधि आदि प्राकृतिक उपादानों एवं पर्यावरण को प्रदूषित होने से संरक्षण हेतु क्रियमाण यज्ञों को प्रदूषण रूपी राक्षस, वृत्र, असुर, यातुधान, कृमि, मृत्यु, विषय, अद्य आदि का अपद्यातक सिद्ध किया है। यज्ञों से ओजोन की रक्षा का उल्लेख किया है। ओषधियाँ प्रदूषण को नष्ट करती हैं तथा प्राण ऑक्सीजन प्राप्त कराती है।
इस प्रकार अथर्ववेद में इन पर्यावरणीय संरक्षक तत्वों तथा पर्यावरण संरक्षण की पुष्कल ज्ञान–राशि प्रतिपादित है। पर्यावरण को स्वस्थ रखने में सहायक सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु आदि की महिमा पौनः पुन्येन गायी गई है, जिनके महत्व को दृष्टिगत रखते हुए पर्यावरण का संरक्षण एवं सन्तुलन बनाने में कृतप्रयत्न रहना चाहिए।

कूट शब्दः अथर्ववेदीय ऋषि, क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, पर्वत, सूर्य, औषधि

प्रस्तावना
पर्यावरण परि + आवरण इन दो शब्दों से मिलकर बना है तथा 'परि' एवंम् 'आ' उपसर्गपूर्वक 'वृञ् आवरणे' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है, इसका व्युत्पत्ति लभ्यार्थ है– ''परितः अर्थात् सर्वतः आवरणम् पर्यावरणम्'' जिसका अभिप्राय है– जो सब ओर से आवृत करें उसे पर्यावरण कहते है। आंग्ल भाषा (अंग्रेजी) के म्दअपतवदउमदज तथा ।जउवेचीमतम के सम्मिलित अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए 'पर्यावरण' शब्द का व्यवहार होता है।
वैदिक ऋषि सृष्टि के उषः काल से ही प्राणिमात्र के कल्याणार्थ निरन्तर सचेत एवं चिन्तनशील रहा है। हमारी विश्ववरेण्या संस्कृति का यही मूल उद्घोष भी रहा है–

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भागभवेत्।।''

आज विश्व की चिन्ता का विषय यह पर्यावरण ही है जो निरन्तर दूषित होता जा रहा है। एतद्र्थ गम्भीर चिन्तन एवं व्यापक रूप से शोधकार्य किए जा रहे हैं। अतः यह सुनिश्चित है कि समूची पृथ्वी पर प्रदूषण का संकट उत्पन्न हो चुका है।
तीव्र औद्योगिक विकास, पूँजीवादी विचारधारा, प्राकृतिक पदार्थों के दोहन, अरण्यों और ग्रामीण पालतु पशुओं कीट, पतंगों और पक्षियों की भयानक रूप से की गई हिंसा, रसायनों के अधिक प्रयोग, विषैली गैसों के उत्सर्जन एवं परमाणु–विस्फोटों के परिणाम–स्वरूप यह विनाश उपस्थित हुआ है। इसे जब तक रोका नहीं जाएगा तथा प्राकृतिक परिस्थितियों एवं मानवीय गतिविधियों के मध्य समन्वय स्थापित नहीं किया जाएगा,तब तक यह विनाश रोका नहीं जा सकेगा। यह भी सुनिश्चित है कि किसी भी देश की समृद्धि का आधार वहाँ का सन्तुलित पर्यावरण ही होता है।
वैज्ञानिक प्रयोग के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि आकाशीय विक्षोभ से वायु, वायवीय विक्षोभ से अग्नि, आग्नेय विक्षोम से जल और जलीय विभोक्ष से पृथ्वी तथा पृथ्वी में होने वाले विक्षोभ से अन्नादि की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार समग्र सृष्टि (उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज) पंचमहाभूतों पर आश्रित होती है। अतः सभी प्राणियों के निरामय जीवन हेतु आकाशदि पंच महाभूतों का विशुद्ध अर्थात् प्रदूषण–रहित रहना आवश्यक है क्योंकि महाभूतों के प्रदूषित होने पर जीवन रोग–ग्रस्त, अशान्त तथा दुःखी होता है। अतः पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए वैज्ञानिक उपाय खोजे जो रहे हैं स्थान–स्थान पर वैज्ञानिक गोष्ठियाँ हो रही हैं जिससे प्राणियों को पंचमहाभूतों के गुण प्रदूषण–रहित विशुद्ध रूप में प्राप्त हों यथा–आकाश का शब्द अनुद्वेगकर हो, वायु का स्पर्श मृदु हो, अग्नि का रूप सुखद हो, जल का रस सुस्वादु हो तथा पृथ्वी की गन्ध अनन्ददायिनी हो।

वेदज्ञ विद्वानों को यह सुविदित है कि विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में यत्र–तत्र विविध विद्या–विषयों का वर्णन उपलब्ध है। अतः प्राचीन ऋषि पर्यावरण के प्रति भी पर्याप्त सचेत थे एतदर्थ उन्होंने आभ्यन्तर और बाह्य–जगत् की शुद्धि करते रहने के लिए विविध मन्त्रों में स्पष्ट निर्देश एवं प्रेरणाएँ प्रदान की हैं।

वेदों में वायुमण्डल की शुद्धि के लिए द्यु–भू के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। द्यु–भू में सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथ्वी तीनों का समावेश है। द्यु–भू परस्पर सम्बद्ध हैं। इनमें पोष्य–पोषक सम्बन्ध हैं। सूर्य ऊर्जा का श्रोत है। अन्तरिक्ष वृष्टि देता है और पृथ्वी ऊर्जा और वृष्टि का उपयोग करके अन्नादि की समृद्धि से जन–जीवनको संचालित करती है। ये तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं। वायुमण्डल ऊर्जा देकर मानव–मात्र को जीवित रखता है। वृक्ष वनस्पति तथा ऑक्सीजन (व्ल्ळम्छ) देकर मानव–मात्र को शक्ति प्रदान करते हैं। वृक्ष–वनस्पति वर्षा पर निर्भर हैं। इस वृष्टि के चक्र को नियमित बनाने के लिए यज्ञ की आवश्यकता होती है। इस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु से सम्मिलित रूपेण मानव–जीवन का संचालन कर रहे हैं। इस सन्तुलन को बिगाड़ने के कारण प्रदूषण हैं। इन प्रदूषणों को रोकने के लिए वेदों में उपाय बताये गये हैं। अतः वेद–मन्त्रों की व्याखाएँ अपेक्षित हैं। मनुष्य द्वारा किए जाने वाले कतिपय प्रदूषण एवं तन्निवारक तत्त्व ही यहाँ विचारणीय हैं। यथा–भूमि प्रदूषण–दुर्भायवश आज भौतिकता से मदान्ध मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित हैं। उनकी पूर्त्यर्थ वह भूमि से अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने की चेष्टा से रासायनिक खादों का प्रयोग करता है। जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति न्यून हो जाती है परिणामतः उन खादों की मात्रा बढ़ायी जाती है, इस कारण से कृषि रोगग्रस्त हो जाती है, रोग के कृमियों को नष्ट करने के लिए रासायनिक दवाओं का प्रयोग किया जाता है, ऐसी प्रदूषित भूमि से उत्पन्न प्रदूषित अनाजों से मनुष्यों में नाना चर्मरोग, अल्सर, नेत्र–रोग, मस्तिष्क की शिथिलता आदि व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। रासायनिक दवाओं से युक्त भूमि के धूलिकण भी रोग उत्पन्न करते हैं। वेदों में परिधि कही जाने वाली तथा रत्नगर्भा, आनन्दा, आश्रयदा आदि विभिन्न अभिधानों से अभिहित की जाने वाली पृथ्वी को उर्वरक बनाने के लिए गोबर का निर्देश किया गया है–

''करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे।।''[1]

मन्त्र में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि भूमि करीष अर्थात् गोबर के द्वारा अत्यन्त फलवती एवं अन्नवती बनती है। पर्यावरण के शोधन में भूमि का पर्याप्त योगदान है जैसा कि प्रदूषण–निवारण तथा पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सर्वाधिक उपयोगी वृक्षों, वनस्पतियों एवं औषधियों को उत्पन्न करने वाली पृथ्वी ही है।

''विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।''[2]

उक्त मन्त्र में पृथ्वी के ये विशेषण पर्यावरण की दृष्टि से भी सार्थक कहे जाते हैं क्योंकि पर्यावरण की अनुकूलता से ही पृथ्वी विश्व का भरण–पोषण करने में सक्षम होती है। पर्यावरण की दृष्टि से पृथ्वी की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए यजुर्वेद में पृथ्वी की दृढ़ता बनाये रखने तथा उसकी हिंसा न करने का आदेश दिया गया है।

''पृथिवीं दृंह ह पृथिवीं मा हिंसीः।''[3]

वस्तुतः भूमि की उर्वरा शक्ति को चूस लेना तथा कीटनाशक दवाओं का अनुचित प्रयोग, तथा मल–मूत्र तथा कूड़ा–करकट आदि के अनियन्त्रित विर्सजन से पृथ्वी को दूषित करना ही पृथ्वी की हिंसा है। इसके अतिरिक्त भूमि के अनुचित कटान तथा पर्वत एवं मैदानी क्षेत्रों में नदी–तटों पर वन एवं वृक्षों के काटे जाने से भी पृथ्वी की दृढ़ता कम होती है। वेदों में ये दोनों ही कार्य निषिद्ध हैं। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के प्रथम सूक्त 'भूमि सूक्त' में पृथ्वी को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि – 'हे भूमे! मैं तेरे वृक्षों को इस प्रकार काटूँ कि वे पुनः शघ्र अंकुरित हो जायें। हे विमृग्वरि (विशेष रूप से शोधन करने वाली) मैं तेरे मर्मस्थल पर प्रहार न करूँ।'

''यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।''[4]

उक्त मन्त्र के माध्यम से ऋषि ने संकेत किया है कि निर्ममतापूर्वक वृक्ष वनस्पतियों को समूल नष्ट करना ही पृथ्वी के मर्मस्थल पर प्रहार करना है। साथ ही मन्त्र में मृग्वरि सम्बोधन द्वारा पृथ्वी की प्रदूषण–निवारकता की ओर भी संकेत किया गया है।

पृथ्वी पर ताप वृद्धि होने से वैज्ञानिक ऐसा मान रहे हैं कि पृथ्वी के रक्षक एवं आवरक तत्त्व ओजोन परत में छिद्र को भरने के लिए वैज्ञानिक अन्वेषण में लगे हुए हैं। वेद की भाषा में उसका 'उल्ब' कहा जाता है तथा उसे सुरक्षित करने के लिए उपाय बताया हुआ है।

''आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन्।
तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम।''[5]

पर्यावरण के शोध में भूमि का पर्याप्त योगदान है अतः वेद में भूमि को माता कहा गया है'–

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।''[6]

जल–प्रदूषण

जीवन की जो आवश्यक आवश्यकताएँ हैं उनमें जल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्व का पालन–पोषण करने वाला जल ही हैं। मनुष्य अपने शरीर वस्त्र तथा निवास–स्थान की स्वच्छता हेतु जल पर आश्रित होता है अर्थात् पीने और स्वच्छता रखने के लिए जल प्रथम आवश्यकता है। वेद के प्रस्तुत मन्त्र में भी इस ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है–

''श्वात्राः पीता भवत यूयमापोऽ अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः।
ताऽ अस्मभ्यमयक्ष्माऽ अनमीवाऽ अनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽ ऋतावृधः।।''[7]

अर्थात् किसी भी प्रकार के हानिकारक रोगाणुओं और अशुद्धतादि दोषों से रहित, दिव्य गुणों वाले, सुपरीक्षित शुद्ध जलों को पीकर मनुष्य स्वस्थ बलवान् और सुखी रहें। अथर्ववेद के अन्य मन्त्र में स्नानादि के लिए भी शुद्ध जल की कामना की गई है–

''शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं निदध्मः।
पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि।।''[8]

लौकिक कोष अमरकोषादि में भी जलम्, जीवनम् पानीयम् आदि जल के नाम अंकित हैं। विभिन्न नामों वाला जल औषध रूप है–

''आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात्।।''[9]

अर्थात् जल अत्यन्त कल्याणकारक हैं, जैसे माता पुत्र का कल्याण करती है, वैसे ही जल कल्याण करते हैं। अन्यच्च इन जलों को प्राप्त कर जीवन उन्नत हो जाता है। जल अमृत रूप है, जीवनी शक्ति है सब औषधियों का रस है इस प्रकार कहा गया है–

''आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो धृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि।।''[10]

अतः जल के सरंक्षण के लिए वेद में निर्देश दिया गया है–

''माऽपो मौषधीहिंसीः।''[11]

खेद है कि विश्व का पालन–पोषण करने वाले जल को आज दूषित किया जा रहा है। कल–कारखानों के गन्दे जल को नदियों में बहाया जा रहा है, सीवर आदि के दूषित जल को भी तालाब, नदी आदि में छोड़ा जा रहा है। कृषि में प्रयुक्त रासायनिक दवाओं, खादों का प्रयोग होता है, उन खेतों से वर्षा का जल दूषित होता हुआ बहकर मार्गों में तथा नदी–तालाबों में एकत्र होता है, पर्यावरण–प्रदूषण के इन श्रोतों के अतिरिक्त विषाक्त तत्त्वों से प्रदूषण की पहचान करना सरल होगा। एक प्रयोगिक निष्कर्ष के अनुसार जल में घुलनशील ऑक्सीजन (क्व) की मात्रा चार मिग्रा0 प्रति लीटर से कम नहीं होनी चाहिए तथा बॉयलॉजिकल ऑक्सीजन डिमान्ड (ठव्व) के अनुसार जल में कार्बनिक पदार्थ तीन मिग्रा0 प्रति लीटर से अधिक नहीं होना चाहिए। किन्तु गंगा नदी जो भारतीयों को जीवन देती है, वही इस कसौटी पर खरी नहीं उतरी है तो अल्प जल वाली शेष नदियों के भयानक प्रदूषण की कल्पना तो की ही जा सकती है।
प्रदूषित जल से मलेरिया, टॉइफॉइड, पक्षाघात आदि रोग पैदा हो रहे हैं साथ ही अशुद्ध जल में स्नान करने से खाज, खुजली फोड़े–फुंसी आदि चर्म रोग भी उत्पन्न हो रहे हैं।
वैदिक कवियों को पर्यावरण के लिए जलों के महत्त्व का ज्ञान था और उन्होंने जलों के प्रदूषण निवारण का उपाय खोजने का भी प्रयास किया था।
यजुर्वेद में कहा गया है कि जल को दूषित न करो, पौष्टिक गुणों से युक्त करो और औषधियों को जल से सींचकर सुरक्षित रखो–

''अपः पिन्व, औषधीर्जिन्व।''[12]

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि नदियों आदि के जल को प्रदूषण–मुक्त रखने का उपाय है– यज्ञ। यज्ञ की सुगन्धित वायु जल के प्रदूषण को नष्ट करती है–

''अपो देवीरूप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः।''[13]

आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व 'पद्मपुराण' के 'क्रियायोगसार' खण्ड के श्लोक संख्या 8 से 13 तक जल से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण निर्देश दिए गये हैं जैसे गंगा के जल में थूकना, मूत्र–त्याग, कूड़ा–करकट तथा गन्दा जल डालना, गंगा–किनारे शौच आदि महापाप हैं। ऐसा करने वाला नरक में जाता है तथा उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है–

''मूत्रं वाद्ऽथ पुरीषं वा .....ब्रह्महत्यां च विन्दन्ति।''[14]

मनुस्मृति ने बड़े कारखानों को वायु–प्रदूषण जल–प्रदूषण का करण मानते हुए इन्हें लगाना पाप माना है।[15]

वायु–प्रदूषण

वायु सृष्टि का प्राणधार है, वायु का पर्यावरण तथा हमारे जीवन में सीधा सम्बन्ध है, क्योंकि वायु की श्वास प्रश्वास की क्रिया द्वारा सब प्राणियों को जीवन धारण कराती है। यह रोगादि दोषों को शरीर से बाहर करता है–

''आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे।।''[16(क)]

वायु के दूषित हो जाने पर समस्त प्राणियों एवं पदार्थों की जीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है, फेफड़ों का विकृत होना जैसे रोग पनपने लगते हैं। पत्तों पर धूम्र आदि जमने से वृक्षों की वाष्पोत्सर्जन क्रिया न्यून हो जाती है, जिससे वे जन–जीवन द्वारा उच्छवसित दूषित वायु शुद्ध नहीं कर पाते। इतना ही नहीं दूषित वायु का प्रभाव ओजोन परत पर भी पड़ता है जिससे पृथ्वी पर तापमान की वृद्धि हो जाती है। दूषित वायुमण्डल से अम्लीय वर्षा (ओला, हिमपातादि) ऋतुपरिवर्तन आदि का भी संकट उपस्थित हो जाता है, जिसका वनस्पतियों, जलों तथा मानवों पर कुप्रभाव पड़ता है–
ऋग्वेद के एक महत्त्वपूर्ण मन्त्र में निर्देश है कि वायु में अमृत अर्थात् ऑक्सीजन है।

यददो वात ते गृहेऽ अमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे।।[16(ख)]

ध्वनिप्रदूषण

आज चतुर्दिक् वायुयान, यातायात के साधन, रेल तथा अन्य वाहनों से उत्पन्न होने वाला शोर, ध्वनिविस्तारक–यन्त्र, टी0वी0, ट्रॉन्जिस्टर, बड़े–बड़े कारखानों तथा मशीनों का भयंकर शोर। ये सभी ध्वनि–प्रदूषण के घटक हैं। यद्यपि दिल्ली महानगर में प्रदूषण को कम करने के लिए वाहनों से सम्बन्धित कतिपय निर्णय लिये गये हैं किन्तु अन्यत्र भी अपेक्षित हैं। ध्वनि–प्रदूषण का सबसे भयंकर प्रभाव हृदय तथा मस्तिष्क पर होता है। रक्तचाप, अशक्ति, बधिरत्व, अनिद्रा आदि रोग भी इसी की देन हैं। वेदों में कहा गया है कि हम स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक तीखी ध्वनि से बचें और आपस में बातचीत करते हुए भी मधुर एवं मन्द बोलने का प्रयास करें। जब हम परस्पर द्वेषभाव रखकर व्यवहार करते हैं, तब निश्चित ही कलह और संघर्ष की स्थितियों में हमारे वाणी कटु–कर्कश एवं अत्यधिक तीव्र हो जाती है, इसीलिए अथर्ववेद में कहा गया है कि आपस में घर–परिवार में द्वेष न करें–

अनुव्रतः ..... शान्तिवाम्।
''मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।''[17]

अन्यच्च अथर्ववेद के प्रथम काण्ड में ईश्वर से प्रार्थना की गयी है कि मेरे जिह्वामूल तथा जिह्वाग्र में माधुर्य रहे, मेरे कर्म एवं चित्त में माधुर्य रहे मेरी समग्र गतिविधयाँ माधुर्य–युक्त हों–

''जिह्वाया अग्रेमधु मे ..... मधुमतीमिव।।''[18]

वेदों में प्रदूषण को राक्षस, वृत्र, असुर, यातुधान, कृमि, मृत्यु, विष, अघ, अत्रि आदि नामों से अभिहित किया गया है। दयालु परमात्मा ने प्रदूषित पर्यावरण के परिष्कार हेतु–सूर्य, अग्नि, यज्ञ, औषधि, पर्वत, पशु, मन आदि पदार्थ नियुक्त किए हैं, जिसके द्वारा प्रदूषण हटाकर जल, वायु, पृथ्वी को पुनः प्राणियों के लिए जीवनाधायक बनाया जा सकता है। 'अथर्ववेद' में पृथ्वी, जल, वायु के अतिरिक्त वृक्ष और वनस्पतियों को भी पर्यावरण के घटक तत्त्व माना है। वेद में इन तत्त्वों को छन्दस् कहा गया है, जिसका अर्थ है आवरक या पर्यावरण। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए जलवायु और वृक्ष–वनस्पतियों को प्रमुख साधन माना है–

''त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे, पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।''[19]

प्रदूषण निवारक पदार्थों में प्रथम स्थान पर सूर्य को माना गया है। सूर्य की बाल रश्मियाँ जीवों के समस्त रोगों को दूर करती हैं और प्रखर रश्चिमयाँ, पृथ्वी, जल आदि के प्रदूषण को हटाती हैं–

''उत सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन्।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा।।''[20]

मन्त्र से स्पष्ट है कि सूर्य दृष्ट–अदृष्ट समस्त पर्यावरण रक्षक तत्त्वों के प्रदूषण को नष्ट करने का महौषध है।
यजुर्वेद में सूर्य की पवित्र रश्मियों से पर्यावरण को पवित्र करने की कामना की गयी है–

''सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।''[21]

अग्नि– पर्यावरण शुद्धि का महत्त्वपूर्ण साधन है। वेदमन्त्रों में अग्नि को 'पावक'[22] एवं 'पावकशेचिष्' आदि नामों से अभिहित किया गया है। पावक का अर्थ है पवित्र (शुद्ध) करने वाला। इससे अग्नि की शोधकता स्वतः सिद्ध हो रही हैं यद्यपि दैनिक कार्यों में प्रत्यक्षरूपेण अग्नि भोजन, दूध, पानी एवं कच्चे–पक्के अन्नादि में विद्यमान हानिकारक कीटाणुओं को नष्ट कर उन्हें स्वास्थ्यप्रद बनाता है किन्तु पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में अग्नि वेद–विहित अग्निहोत्र के माध्यम से प्रदूषण–निवारक एवं पर्यावरण शोधन का एक सशक्त माध्यम है।
अग्नि के वन्य, सामुद्रीय, यज्ञीय, गार्हस्थ्य तथा जाठर आदि कई भेद हैं, वे सभी अग्नियाँ तत् तत् (सम्बद्ध) पदार्थों के दोषों की नाशक हैं यथा–

''अग्ने हंसि न्यथत्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा। स्वे क्षये शुचिव्रत।।''[23]

अथर्ववेद के प्रस्तुत मन्त्र में भी अग्नि का शोधकत्व द्योतित किया गया है–

''अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः।''[24]
शुचिः पावक ईड्यः।

अग्निहोत्र–वैदिक मान्यता के अनुसार पर्यावरण की शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। यज्ञ की प्रक्रियानुसार अग्नि में आहुति के रूप में घी, सामग्री व अन्य जो पदार्थ डाले जाते हैं,
वे सभी वायु, जल, पृथ्वी तथा समस्त वातावरण की शुद्धि व पुष्टि करने वाले हैं। सामवेद के एक मन्त्र में हवि द्वारा वायुमण्डल को शुद्ध करने की प्रेरणा दी गई है–

''आ जुहोता हविषा मर्जयध्वम्।''[25]

अथववेद के एक मन्त्र में वर्णन है कि अग्नि में दी हुई आहुति वायुमण्डल के रोगाणुओं को उसी प्रकार दूर कर देती है, जिस प्रकार नदी झाागों को–

''इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवावहत्।''[26]

एक सूक्त में वैद्य रोगी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि – मैं यज्ञ में दी हुई आहुति द्वारा अज्ञात रोग से और राजक्ष्मा रोग तक से तुझे छुड़ाये देता हूँ–

'मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।''[27]

औषधियाँ भी प्रदूषण को नष्ट करती हैं, औषधियों के द्वारा ही मनुष्य को प्राण ऑक्सीजन प्राप्त होता है, नीरोगता प्राप्त होती है–

''उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः।।[28]

पर्वतों का भी पर्यावरण को दोषमुक्त रखने में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे जहाँ भूमि की सुरक्षा करते हैं, वर्षा कराने में सहायक बनते हैं, वहीं वे पर्वत शुद्ध वायु, पवित्र नदियाँ, जीवनदायिनी ओषधियाँ तथा बहूमूल्य खनिज–पदार्थ देकर मानीवय जीवन को सुखमय बनाते हैं। प्रदूषण से बचाते हैं–

''इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतत्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन।''[29]

प्रकृति में पर्यावरण–शोधन की स्वाभाविक प्रक्रिया विद्यमान है। नदी, पर्वत, सूर्य एवं बादल आदि सभी किसी न किसी रूप में प्रदूषण को दूर करने में लगी हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र में इन सभी का नाम लेकर इन्हें प्रदूषण को शान्त करने वाली बताया है–

''ये पर्वताः सोमपृष्ठाः आप उत्तानशीवरीः।
वातः पर्जन्यः आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन्।।''[30]

ऋग्वेद में उदय होते हुए सूर्य को हृदय रोग एवं प्रदूषण का विनाशक कहा गया है–

''उद्यन्द्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।।''[31]

निष्कर्ष रूप में यही कहना है कि वैदिक ऋषि न केवल पर्यावरण के प्रति सजग थे अपितु पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के उपायों के प्रति भी सजग थे तथा इस ओर इन्होंने समाज का ध्यान भी आकृष्ट किया। वे भूमि को ईश्वर का ही रूप मानते थे तथा पर्यावरण की रक्षा पूजा का एक अविभाज्य अंग था–

''यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।''[32]

संदर्भ सूची

1. अथर्ववेद– 19.31.3
2. अथर्ववेद–12.1.6
3. यजुर्वेद– 13.18
4. अथर्ववेद– 12.1.35
5. अथर्ववेद– 4.2.8
6. अथर्ववेद– 12.1.12
7. यजुर्वेद– 4.12
8. अथर्ववेद– 12.1.30
9. अथर्ववेद– 3.7.5
10. ऋग्वेद– 10.17.10
11. यजुर्वेद– 6.22
12. यजुर्वेद– 14.8
13. ऋग्वेद– 1.23.18
14. पद्मपुराण, क्रियायोगसार खण्ड, अ0–8, श्लोक सं0–8 से 13 तक।
15. महायन्त्र प्रवर्तनम् ..... उपपातकम्, मनु0 11.63–66
16. (क) अथर्ववेद– 4.13.3
    (ख) ऋग्वेद–10.186.3
17. अथर्ववेद– 3.30.2, 3
18. अथर्ववेद–1.34.2–4
19. अथर्ववेद–18.1.17
20. अथर्ववेद–6.52.1
21. यजुर्वेद– 4.4
22. ऋग्वेद–1.12.18,

23. तथा 3.9.8
24. ऋग्वेद–10.118.1
25. अथर्ववेद–8.3.26
26. सामवेद–1.7.1
27. अथर्ववेद–1.8.1
28. अथर्ववेद–3.11.1
29. अथर्ववेद–8.7.10
30. ऋग्वेद–10.18.4
31. अथर्ववेद–3.21.10
32. ऋग्वेद–1.50.11
33. अथर्ववेद–10.7.32